वीर संवत २४९२, फागुन शुक्ल ७, रविवार

दि.२७-२-१९६६, गाथा-१५, प्रवचन नं.-३८

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' चलती है। उसकी चौथी ढाल। उसका १५ वाँ श्लोक अन्तिम है। चौथी ढाल है न ? १५ वाँ श्लोक, '**निरतिचार श्रावकव्रत पालन का फल।**' यह अन्तिम श्लोक है।

बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै;
मरण-समय संन्यास धारि तसु दोष नशावै।
यों श्रावक-व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै;
तहँतें चय नरजन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै।।१५।।

---

१. न हि सम्यग्व्यपदेश चारित्रमज्ञानपूर्वकं लभते।
ज्ञानान्तरमुक्तं, चारित्राराधनं तस्मात्।।३८।।

अर्थ :- अज्ञानपूर्वक चारित्र सम्यक् नहीं कहलाता, इसलिये चारित्र का आराधन ज्ञान होने के पश्चात् कहा है।

(पुरुषार्थसिद्धिउपाय गाथा-३८)

देखो ! क्या कहते हैं ? '**अन्वयार्थ :- जो जीव बारह व्रत के पाँच-पाँच अतिचारों को नहीं लगाता...**' व्रत के अतिचार हैं। यह व्रत किसे होते हैं ? यह बात पहले आ गई है कि सम्यग्ज्ञान हो, फिर चारित्र के बारह व्रत का विकल्प होता है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता और सम्यग्दर्शन, वह आत्मा अखण्ड शुद्ध आनन्दस्वभाव के आश्रय के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया ? निमिक्त से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। दया, दान, व्रत का राग – मन्द परिणाम से सम्यग्दर्शन नहीं होता; वर्तमान प्रकट पर्याय जितना क्षयोपशम ज्ञान, दर्शन और विकास है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन (तो) एकरूप चिदानन्दस्वरूप भूतार्थ आत्मा ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा – वस्तु ध्रुव, उसके आश्रय से उसके अनुभव में, उसमें एकाग्र होने पर सम्यग्दर्शन की पर्याय मोक्षमार्ग का प्रथम अवयव पहला प्रकट होता है। कहो, समझ में आया ? उस सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता और सम्यग्ज्ञान के बिना उसे व्रत आदि चारित्र-बारित्र नहीं होता। कहो, समझ में आया ?

यह चीज़ क्या है ? किसमें स्थिर होने से, स्थिर होने से चारित्र होता है ? चारित्र अर्थात् स्थिरता-रमना। किसमें ? क्या चीज़ है वह ? वह चीज़ सैकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण आनन्द ध्रुव अन्तर्मुख... अन्तर्मुख दृष्टि करने से निर्विकल्प आनन्द के अनुभवसहित अन्दर पूर्ण शुद्ध की एकता प्रकट हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, भाई ! वह सम्यग्दर्शन कारण है और साथ में आत्मा का ज्ञान होता है, वह कार्य है। हैं तो (दोनों) एक साथ। (जैसे) दीपक और प्रकाश एकसाथ है, तथापि दीपक, वह कारण है और प्रकाश, वह कार्य है; हैं एकसाथ।

ऐसे हो आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द का भान अन्तर्मुख में राग, विकल्प जो, दया, दानआदि कषाय की मन्दता से मेरा कार्य नहीं होता। शरीर की अनुकूलता से, निमित्तता से भी मेरा कार्य नहीं होता; मेरा कार्य तो शुद्ध चैतन्य के अन्तर अनुभव की दृष्टि से होता है – ऐसा जानकर, अनुभव कर सम्यग्दर्शन प्रकट हो, उसे प्रथम निर्विकल्प आनन्द का अनुभव होता है। ऐसे आनन्द में उसे प्रतीति होती है कि यह सम्पूर्ण आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय है। इसमें स्थिर होने से मुझे शक्तिमें से अधिक आनन्द प्रकट होगा। ऐसा सम्यग्दर्शन- इस आत्मा के आनन्द का

भानवाला हो, तब उसे सम्यग्ज्ञान आत्मा का (सम्यग्ज्ञान होता है)। और राग बाकी रहे, उसका उसे ज्ञान होता है। समझ में आया ?

आत्मा का ज्ञान... दर्शन में तो अकेला आत्मा अखण्डशुद्ध, उसकी प्रतीति का भान और अनुभव। ज्ञान-आत्मा पवित्र है और साथ में वर्तमान में अल्पज्ञता वर्तती है और जो रागादि भाव आते हैं, उन सबको जाने, उसे स्वसन्मुखता के ज्ञानवाला, उसे ज्ञान कहा जाता है। अद्भुत शर्त ! ऐसे ज्ञानसहित पंचम गुणस्थान में श्रावक को अन्दर स्वरूप की शान्ति विशेष प्रकटती है। सम्यग्दर्शन उपरान्त स्वरूप में, दूसरे कषाय का अभाव करके (विशेष शान्ति प्रकटी है)। सम्यक् में तो एक अनन्तानुबन्धी का अभाव है और भ्रान्ति का अभाव है। श्रावक को... श्रावक अर्थात् यह बाड़ा (सम्प्रदाय) में रहनेवालों की बात नहीं है। यह तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर द्वारा कहे हुए की बात हैं। अन्दर में आत्मा के आनन्द का भान और शान्ति की - अविकारी शान्ति की वृद्धि पाँचवे गुणस्थान में होती है, कि जो शान्ति, सर्वार्थसिद्धि के समकिती देव से भी अधिक शान्ति होती है। समझ में आया ? सर्वार्थसिद्धि का देव सम्यग्दृष्टि-अनुभवी है, परन्तु उसे चौथा गुणस्थान है, पाँचवा नहीं।

पाँचवे गुणस्थान में मनुष्य को सम्यग्दृष्टि सर्वार्थसिद्धि के देव से भी अन्तर का शान्तभाव, अविकारी परिणमन चौथे गुणस्थानवाले एकावतारी सर्वार्थसिद्ध देव से बढ़ गयी शान्ति होती है। ऐसी भूमिका में ऐसे बारह व्रत के विकल्प होते हैं। भाई ! लोगों को एक भी तत्त्व का पता नहीं होता। वे बाहर से मानते हैं कि यह व्रत है और यह अतिचार टालो और यह करो। परन्तु नियम नहीं होता, वहाँ व्रत कहाँ से आये ? 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' - मूल ही नहीं है, उसे शाखायें कहाँ से आ गयी ? कौन जाने ? पूछो उस चतुर मनुष्य को। किसी जगह मूल के बिना कदाचित् वृक्ष होता होगा ?

कहते हैं ऐसे बारह व्रत के विकल्प, अहिंसा अणुव्रत - ऐसे पंचमगुणस्थान में, दूसरे त्रस को तो संकल्प से मारने का भाव होता नहीं, विरोधी हिंसा आदि का भाव होता है।

मुमुक्षु :- हिन्दी में...

उत्तर :- हिन्दी प्रवचन कहाँ आ गया फिर से ?

मुमुक्षु :- कहाँ से आये ? (श्रोता :- पंजाब से)।

चौथी ढाल है, उसमें हिन्दी में १५ वाँ श्लोक है, गुजराती में १४वां है, हिन्दी में १५ वाँ है। है न अन्तिम का ? हिन्दी में १५ वाँ है। '**जो जीव बारह व्रतों के पाँच-पाँच अतिचारों को नहीं लगाता,...**' यह व्याख्या चलती है। परन्तु किसको व्रत है, वह बात पहले चली। क्या चली ? कि, यह आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसी अन्तर में पुण्य-पाप के भाव की रुचि छोड़कर और संयोगी निमित्त की रुचि छोड़कर, ज्ञानानन्दस्वभाव की अंतर्मुख की अनुभव दृष्टि हो उसका नाम सम्यग्दर्शन पहले कहने में आता है। भैया ! समझे ? सम्यग्दर्शन।

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणी मोक्षमार्ग:' आता है न ? 'उमास्वामी'। 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:' तो सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं ? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' तत्त्वार्थ किसको कहते हैं ? कि, जीव-ज्ञायक चैतन्यूर्ति भगवान शुद्ध पूर्ण है, ऐसी अन्तर्मुख होकर (निर्विकल्प प्रतीति करना)। पुण्य-पाप का भाव आस्रवतत्त्व है। शरीर, कर्म अजीवतत्त्व है, अजीवतत्त्व की रुचि छोड़कर और शुभ-अशुभभाव जो होता है, वह आस्रवतत्त्व है। उसकी भी रुचि छोड़कर। आस्रव और अजीव से भिन्न अकेला ज्ञायक तत्त्व चिदानंद भगवान आत्मा है, ऐसी स्वसन्मुख में राग से विमुख होकर, निमित्त से विमुख होकर पूर्ण स्वभाव के सन्मुख होकर अन्तर में दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहने में आता है। समझे या नहीं ? यहाँ तो सादी हिन्दी है। हमें बहुत हिन्दी आती नहीं। साधारण हिन्दी है। हम तो काठियावाड़ी है न ! समझ में आया ?

भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक समय में तीनकाल तीनलोक देखा। भगवान से मुख जो सम्यग्दर्शन की व्याख्या आयी, वही व्याख्या भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' ने की है। समझ में आया ? दो हजार वर्ष पहले संवत ४९ में भरतक्षेत्र में 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' नग्न दिगंबर मुनि थे, जो भगवान के पास गये थे, 'सीमंधर' परमात्मा के पास आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर 'समयसार' आदि यहाँ बनाये। उसी के अनुसार 'दौलतरामजी' ने भी 'छहढाला' में संत, मुनि तीर्थंकर कहते हैं उसी प्रकार से हिन्दी में

'छहढाला' बनाई। अपने घर की कोई बात है नहीं। समझ में आया ?

कहेत हैं कि, बारह व्रत किसको होते हैं ? बारह व्रत पंचम गुणस्थान में होते हैं। समझ में आया ? पंचम गुणस्थान किसको कहते हैं ? सर्वार्थसिद्धि के एकभवतारी देव हैं, उसको सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन में उसको जितनी आत्मा के अनुभव की शांति मिली और उसे रागादि दूसरे तीन कषाय का भाव है, उससे पंचम गुणस्थान में उससे अधिक शान्ति होती है। वह चौथे गुणस्थान में हैं। और पंचम गुणस्थान के श्रावक, सच्चे श्रावक की बात चलती है, हाँ ! संप्रदायवाले की बात यहाँ नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी में आया कि, पंचम गुणस्थान का श्रावक ऐसा है कि, सर्वार्थसिद्धि से भी उसको आत्मा की शान्ति, अकषायभाव (विशेष प्रकट हुआ है)। दो कषाय टल गया है - अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी। प्रत्याख्यानी और संज्वलन दो (कषाय) रहे हैं। पंचम गुणस्थान में श्रावक को अपने अनुभव में आत्मा आनंदकंद शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा आ गया है। इसके अलावा दूसरे कषाय के अभाव से शांति भी बढ़ गई है। ऐसे पंचम गुणस्थान में ऐसे बारह व्रत का विकल्प आता है, जो पुण्यबन्ध का कारण व्यवहारचारित्र कहने में आता है। समझ में आया ? भैया ! सूक्ष्म बात है। उसने अनंतकाल में चैतन्य का पता ही लिया नहीं।

नौंवी ग्रैवेयक अनन्तबार गया। इसमें पहले आ गया न ?

मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।

आता है ना उसमें ? पहले आ गया है, 'छहढाला' में आ गया है। क्या पंक्ति हैं ? कौन-सी है ? 'मुनिव्रत धार' आता है या नहीं ? चौथी ढाल की पाँचवी। ये चौथी चलती है उसकी न ? आता है, देखो ! पाँचवी (गाथा) है। चौथी ढाल का पाँचवा श्लोक है। ९९ पन्ना है। १०० में १ कम।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे;
ज्ञानीके छिनमें त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।

करोड़ों भव में, करोड़ों मनुष्यभव में, करोड़ों मनुष्यभव जब मिला तब। मनुष्यभव भी अनन्तकाल में मिलता है। उसमें भी मनुष्य भव में करोड़ों भव में, करोड़ों वर्ष तप करे परन्तु आत्मा के ज्ञान बिना उसमें कुछ लाभ है नहीं। '**मुनिव्रत धार अनंतबार, ग्रीवक उपजायो;...**' मुनिव्रत धार। अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत अनन्तबार लिये, अनन्तबार लिया। '**पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।**' क्या कहते हैं ? पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प भी दु:खरूप है, राग है, आस्रव है। समझ में आया ? क्या कहा ? देखो !

'**मुनिव्रत धार अनन्तबार, ग्रीवक उपजायो; पै निज आतमज्ञान...**' विकल्पपुण्य का परिणाम है, पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का, महाव्रत का विकल्प जो राग है वह विकार है, दु:ख है, आस्रव है। उसका पालन किया तो स्वर्ग में गया। परन्तु रागरहित मेरी चीज़ (है उसका) '**आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।**' बराबर है ? आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है। महाव्रत का, व्रत का विकल्प से भिन्न है, ऐसे आत्मा की अनुभव की दृष्टि किये बिना उसको अंश भी आत्मा का आनंद आया नहीं। पंच महाव्रत पाला और आनन्द नहीं आया। क्योंकि पंच महाव्रत तो राग है, पुण्य है, दु:ख है। आहा..हा... ! भाई ! दुनिया ने वीतरागमार्ग सुना ही नहीं।

सच्चे महाव्रत, हाँ ! सम्यग्दर्शन बिना के। अट्ठाईस मूलगुण - खड़े-खड़े आहार, एकबार आहार, इन्द्रियदमन, षट् आवश्यक, सामायिक आदि बराबर (पाले), हाँ ! सम्यग्दर्शन बिना के। सम्यग्दर्शन हो तो भी वह है तो राग ही। बंध का कारण है। सम्यग्दर्शन मुनि को है, सच्चे मुनि को भी पंच महाव्रत का विकल्प आता है, वह राग है, आस्रव है, दु:ख है, विकार है, बन्ध का कारण है - ऐसा ज्ञानी जानते हैं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! अनन्तकाल में उसने तत्त्व को सुना ही नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि, आत्मदृष्टि बिना, अनुभव बिना, आत्मज्ञान के बिना अट्ठाईस मूलगुण उसने अनन्तबार पाले। नग्न दिगम्बर (हुआ), हजारों रानियों का त्याग (करके) मुनि हुआ, आनन्द लेश न पाया, क्योंकि आनन्द तो आत्मा में है। महाव्रत का परिणाम तो शुभ है, राग है, दु:ख है; उसमें आनन्द नहीं। भाई ! बहुत चिल्लाते हैं। हम पालते हैं न ! तू धूल पालता है। सुन तो सही, तुझे मालूम नहीं। श्रद्धा की खबर नहीं, ज्ञान की खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, निज आत्मज्ञान। भगवान का ज्ञान नहीं; भगवान परद्रव्य हैं, सिद्ध परद्रव्य हैं। अपना निज, शब्द है न ? **'पै निज आतमज्ञान।'** बड़ा शब्द है। उसमें गागर में सागर भर दिया है। 'दौलतरामजी' में सारे शास्त्र का हिन्दी में थोड़ा सार भर दिया है। लोगों को अर्थ का पता नहीं और कंठस्थ कर ले, बोल ले। **'निज आतमज्ञान'** अपना आत्मा। यह व्रतादि का जो विकल्प है, राग है, (उससे) भिन्न है, ऐसा अन्तर का आत्मज्ञान, आत्म अनुभव बिना, अंशमात्र भी अतीन्द्रिय आनन्द का सुख पाया नहीं। उसका अर्थ कि, आत्मा के ज्ञान बिना ऐसे पंच महाव्रत अनन्तबार पाले तो भी दु:ख पाया। ऐसा अर्थ हुआ कि नहीं ? भैया ! दु:ख पाया, ऐसा अर्थ है न ? आत्मा का आनन्द न पाया। आनन्द न पाया तो दु:ख पाया, ऐसा अर्थ है न उसमें ? आहा..हा... ! समझे कुछ नहीं और ऐसा मान ले कि, हम समझते हैं, समझते हैं। बफम् में ही बफम् में जिंदगी चली गई। बफम् में अर्थात् अंधापे में - अज्ञान में; और अज्ञान में अनन्तकाल चला गया, परन्तु वास्तविक तत्त्व की क्या दृष्टि है और वास्तविक तत्त्व का ज्ञान क्या है और वास्तविक तत्त्वपूर्वक बारह व्रत के विकल्प का क्या स्वरूप है ? - उसका भी उसने बोध किया नहीं। यहाँ तो वह कहते हैं। यह चौथी ढाल की पाँचवीं गाथा है। पंद्रहवी चलती है। समझ में आया ? चलती है वह पंद्रहवी है, वह पांचवी थी।

आत्मज्ञान, जो आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, आत्मा में बेहद आनन्द और ज्ञान है, ऐसा अनन्तगुण का पिंड प्रभु (जीवतत्त्व है)। पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है, शरीर, वाणी अजीवतत्त्व हैं। कहते हैं, यह सम्यग्दृष्टि जीव अपने ज्ञान के अनुभव की आनन्द की भूमिका में स्वरूप में स्थिर नहीं रह सकता तो उसे बारह व्रत का विकल्प, शुभराग आये बिना रहता नहीं। समझ में आया ? बारह व्रत का विकल्प है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। आस्रव है या नहीं ? भैया ! कहते हैं, स्वर्ग मिलेगा, उससे स्वर्ग मिलेगा; और जितना स्वरूप की दृष्टि और अनुभव हुआ है, उससे संवर, निर्जरा होगी। भैया ! सूक्ष्म बात है, भैया !

लोगों में वर्तमान में बहुत गड़बड़ चली है। उस गड़बड़ के सामने यह बात आती है तो ऐसा लगता है कि, एकान्त है। भगवान ! सुन तो सही, प्रभु ! तेरी चीज़ निराली है, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो फरमाया है ऐसा मार्ग दूसरे में कहीं है नहीं। वीतराग परमेश्वर

सर्वज्ञदेव एक समय में तीनकाल तीनलोक जिन्होंने देखा, उन्होंने सम्यग्दर्शन-ज्ञान का ऐसा स्वरूप कहा है। समझ में आया ? सर्वज्ञ के अलावा दूसरे में तो कोई मार्ग है नहीं।

कहते हैं, ऐसे पंचम गुणस्थानवाला जीव बारह व्रत का पालन करे, शुभराग है, परंतु पीछे स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप के आनन्द की शान्ति है उतना धर्म है। समझ में आया ? और जितना बारह व्रत का विकल्प आता है वह पुण्यबन्ध है। कहेत हैं कि, '**पाँच-पाँच अतिचारों को नहीं लगाता...**' पीछे '**मृत्यु काल में...**' जब मृत्यु-काल आता है तब '**समाधि धारण करके...**' देखो ! शान्त... शान्त... शान्त... अन्तर समाधि आनन्द (में) स्थिर होकर संन्यास धारण करे। '**उनके दोषों को दूर करता है...**' श्रावक समाधिमरण में आत्मा के आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द में दृष्टि देकर शान्ति में रहते हैं, तब उन्हें समाधिमरण होता है। अन्तर में शान्ति होती है तो समाधिमरण होता है।

'**इस प्रकार श्रावक के व्त पालन करके सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होता है,...**' सोलहवें स्वर्ग (तक जाता है)। राग है न ! इतना पुण्यबन्ध हो जायेगा। मुनि को भी जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक आत्मा के अनुभव में तीन कषाय का अभाव है, इतनी तो संवर, निर्जरा है। उनको भी जितना पंच महाव्रत का परिणाम आता है, वह भी शुभराग आस्रव है। उससे बन्ध हो जायेगा स्वर्ग में जायेगा, (वह) संवर, निर्जरा नहीं (है)। समझ में आया ? भैया ! समझ में आया या नहीं ? '**उत्पन्न होता है,...**'

'**वहाँ से मृत्यु प्राप्त करके...**' देखो ! सम्यग्दृष्टि श्रावक अपने स्वरूप की दृष्टि अन्तर में रखकर, शान्ति का वेदन करके अन्त में समाधिमरण करके स्वर्ग में जाते हैं। सोलहवाँ अच्युत स्वर्ग है न ? अच्युत देवलोक में जाते हैं। '**वहाँ से मृत्यु प्राप्त करके...**' वहाँ की स्थिति पूरी होकर '**मनुष्यपर्याय पाकर...**' वहाँ से मनुष्य होता है। अपना अपूर्व काम (बाकी) रह गया, वह '**मुनि होकर मोक्ष जाता है।**' श्रावकपने में कभी मोक्ष होता नहीं। समझ में आया ? भले पंचम गुणस्थान में अनुभव दृष्टि, एकावतारी हुआ परन्तु जब मुनि हो, दिगम्बर सन्त आत्मा के आनन्द में झूलते-झूलते,झूलते इतना अतीन्द्रिय आनन्द, तीन कषाय के अभाव में आते हैं, तब नग्न दिगम्बर अवस्था हो जाती है। दिगम्बर अवस्था; उनको वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प होता

नहीं। ऐसी दिगम्बर मुनि अवस्था हुए बिना मोक्ष कभी होता नहीं। समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में वस्त्र-पात्र सहित हो तो सम्यग्दृष्टि हो सकता है, पंचम गुणस्थान हो सकता है, मुनि नहीं हो सकता; और मुनि (हुए) बिना मुक्ति कभी होती नहीं।

यह कहते हैं, देखो ! '**मनुष्यपर्याय पाकर मुनि होकर मोक्ष जाता है।**' स्वर्ग में से निकलकर उत्तम कुल में पुण्य के कारण उत्पन्न होता है। वहाँ अल्पकाल में गृहस्थाश्रम छोड़ देते हैं। मुनिपना आत्मा के आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते उग्र पुरुषार्थ से शान्ति का वेदन करते-करते पंच महाव्रत का पहले विकल्प आता है, फिर उसे भी छोड़कर स्वरूप में स्थिर होकर केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। समझ में आया ? नीचे नोट है न ? संल्लेखना की व्याख्या करेंगे।

'**क्रोधादि के वश होकर विष, शस्त्र अथवा अन्नत्याग आदि से प्राणत्याग किया जाता है, उसे आत्मघात कहते हैं। संलेखना में सम्यग्दर्शनसहित...**' है। संलेखना आत्मघात नहीं, वह आपघात नहीं। संलेखना में आनन्दकन्द की भूमिका का भास है अन्दर। '**सम्यग्दर्शनसहित आत्मकल्याण के हेतु...**' अन्तर में आनन्द में रहने के कारण, अतीन्द्रिय आनन्द में झूलने के कारण '**काया और कषाय को कृष करते हुए...**' काया भी कृष पडती है और कषाय भी पतला हो जाता है। '**सम्यक् आराधनापूर्वक...**' आत्मा की शान्ति, निर्विकल्प आनन्द की आराधनापूर्वक '**समाधिमरण होता है, इसलिये वह आत्मघात नहीं...**' वह तो '**धर्मध्यान है।**' वह आत्मघात नहीं। लोग कहते हैं, वह मर गया। ऐसा नहीं है।

सम्यक् आत्मा के अनुभव में आनन्दकन्द में झूलते (हुए) शरीर का कृश होना और कषाय थोड़ा पतला है, उसे भी कृश करते हैं, और आत्मा का अकषायभाव उग्र करते हैं। ऐसे में देह छूट जाना, वह तो आत्मध्यानसहित धर्मध्यान है, उसको समाधिमरण कहते हैं। समझ में आया ? देखो, भावार्थ।

'**जो जीव श्रावक के उपर कहे हुए बारह व्रतों का विधिपूर्वक जीवपर्यंत पालन करते हुए उनके पाँच-पाँच अतिचारों को भी टालता है...**' शास्त्र में सब अधिकार हैं। '**मृत्युकाल में दोषों का नाश करने के लिये विधिपूर्वक समाधिमरण (संलेखना) धारण करके उनके पाँच**

अतिचारों को भी दूर करता है, वह आयु पूर्ण होने पर मृत्यु प्राप्त कर...' देखो ! आयु पूर्ण होने पर उसकी मृत्यु होती है, आगे-पीछे मृत्यु होता नहीं। जिस समय जहाँ आयु पूर्ण होनेवाला है, वहाँ होता है। **'सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होता है।'** यह तो उत्कृष्ट बात कही है, हाँ ! कोई आठवें, पाँचवें, दसवें स्वर्ग तक भी जाये, कोई सोधर्म में भी जाये। पहला सोधर्म देवलोक है, वहाँ भी उत्पन्न हो परन्तु उत्कृष्ट जाये तो श्रावक सोलहवें तक जाये।

'फिर देवायु पूर्ण होने पर मनुष्य आयु पाकर,...' मनुष्यभव बिना मुनिपना होता नहीं। देव में मुनिपना नहीं, सम्यग्दर्शन है, नारकी मैं सम्यग्दर्शन है, पशु में पंचम गुणस्थान है। समझ में आया ? पशु है न ? पशु, उसे पाँचवा गुणस्थान श्रावक होता है। अढाई द्वीप के बाहर असंख्य श्रावक हैं। ये अढाई द्वीप है ना ? अढाई द्वीप के बाहर असंख्यद्वीप, समुद्र हैं। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य श्रावक हैं। सुना है या नहीं ? अढाई द्वीप के बाहर। ये अढाई द्वीप तो मनुष्य का है, उसमें तो संख्यात् मनुष्य हैं। अढाई द्वीप के बाहर असंख्य समुद्र हैं। बाहर असंख्य समुद्र और द्वीप हैं। उसमें एक स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात समकिती पंचम गुणस्थानवाले पशु हैं। किसी को अवधिज्ञान है, किसी को जातिस्मरण है। ऐसा सम्यक् अनुभववाला, हाँ ! आत्मदर्शनवाले। ऐसे असंख्य श्रावक स्वयंभूरमण समुद्र में हैं, लेकिन उसमें मुनिपना नहीं आता। नारकी और देव में चौथा गुणस्थान होता है, पशु में पंचम होता है, मनुष्य को तो चौथे से केवलज्ञान तक प्राप्त होता है। समझ में आया ?

पशु का नहीं सुना होगा। अढाई द्वीप के बाहर है, भैया ! स्वयंभूरमण समुद्र है, द्वीप हैं, मगरमच्छ हैं, मच्छी हैं। समकिती, आत्मज्ञानी, हाँ ! आत्मा का अनुभव करनेवाला, आनन्द का अनुभव करते-करते पंचम गुणस्थानवाले। पंचम गुणस्थानवाले असंख्य श्रावक बाहर हैं, पशु ! भाई ! कौन जाने भगवान जाने कौन होंगे ? मनुष्य में तो मनुष्य थोडे हैं। भगवान ने असंख्य श्रावक कहे हैं। परमात्मा केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने पंचम गुणस्थानवाले असंख्य श्रावक कहे हैं। समझ में आया ? तो मनुष्यपने में तो असंख्य है नहीं। बाहर पशु में हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, पूर्ण शुद्धता प्राप्त करने का एक मनुष्यपना ही है, दूसरे में है नहीं। समझ में

आया ? आत्मा का आनन्द, सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान, जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा है, ऐसे आत्मा का आनन्द अनुभव हो, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? आहा..हा...!

मुमुक्षु :- बहुत कठिन है...

उत्तर :- है, ऐसा है। अनादि है। दुनिया कुछ मान लेती है। दुनिया निम्बोली को नीलमणि मान ले तो क्या नीलमणि हो जाती है ? ऐसे सम्यग्दर्शन मान ले कि, हमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, नौं तत्त्व की श्रद्धा है तो समकित है। वह समकित है ही नहीं। समझ में आया ? वह तो अनन्तबार नौंवी ग्रैवेयक गया तब ऐसा तो अनन्तबार माना था। अनन्तबार नौंवी ग्रैवेयक गया। समझ में आया ? दिगम्बर लिंग धारण करके, अट्ठाईस मूलगुण (का) पालन करके, हजारों रानियों का त्याग करके (गया)। वह पहले आया न ? समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन भगवान इसको कहते हैं, '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।**' भगवान आत्मा... 'समयसार' की ११ वीं गाथा में है। '**भूदत्थमस्सिदो**' भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप पूर्ण आनन्द अनन्त गुण का पिंड, निर्विकल्प आनन्द (स्वरूप में) अन्तर सन्मुख होकर, पुण्य-पाप का विकल्प, राग से विमुख होकर, निमित्त से विमुखता होकर अन्तर आनन्दस्वरूप में सन्मुख होकर अतीन्द्रिय आनन्द के वेदनसहित प्रतीति हो, उसका नाम सर्वज्ञ परमात्मा, सम्यग्दर्शन कहते हैं। भैया ! समझ में आया ? उसके बिना सब मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो नौं तत्त्व को विकल्पसहित माने, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र को माने। उनको माने बिना तो शुक्ललेश्या तो होती नहीं। नौंवी ग्रैवेयक गया तो शुक्ललेश्या लेकर गया। सुना है न ? भैया ! नौंवी ग्रैवेयक आया न पहले ? 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रैवेयक,' शुक्ललेश्या, हाँ ! अनन्तबार शुक्ललेश्या हुई।

शुक्लध्यान दूसरी चीज़ (है), शुक्ललेश्या दूसरी चीज़ (है)। शुक्ललेश्या तो अभवि को भी होती है। शुक्लध्यान दूसरी चीज़ (है)। वह तो आत्मा का अनुभव (होने के बाद) आठवें गुणस्थान में शुक्लध्यान होता है। शुक्ललेश्या अनन्तबार प्रत्येक प्राणी को आ गई। नौंवी ग्रैवेयक अनन्तबार गये। सुना न नौंवी ग्रैवेयक ? ग्रैवेयक। चौदह राज पुरुषप्रमाण है।

ग्रैवेयक यहाँ सर पर है। भगवान केवलज्ञानी परमात्मा ने लोक को पुरुषाकार देखा है। वहाँ ग्रैवेयक के स्थान में ग्रैवेयक की नव पृथ्वी हैं। वहाँ ३१ सागरोपम की स्थिति में अनन्तबार जीव (गया है)। पंच महाव्रत का परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण का परिणाम, हजारों रानियों का त्याग, बारह-बारह महिने का उपवास का भाव, ऐसी शुक्ललेश्या करके नौंवी ग्रैवेयक अनंतबार गया। समझ में आया ? आत्मा का कोई कार्य किया नहीं। शुभभाव... शुभभाव... शुक्ललेश्या का शुभभाव। ऐसा शुभभाव कि, दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने आये तो डिगे नहीं, ऐसा उसका शुक्ललेश्या का शुभभाव होता है। समझ में आया ? उसके लिये आहार बनाने में एकेन्द्रिय का एक पत्ता भी मरा हो तो आहार न ले। उसके लिये बना हुआ आहार हो तो प्राण जाये तो भी न ले। ऐसी शुक्ललेश्या अनन्तबार की। समझ में आया ? परन्तु आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना उसका कुछ लाभ हुआ नहीं। आहा..हा... ! कहो, समझ में आया ? वह यहाँ कहते हैं, देखो !

'सम्यक्चारित्र की भूमिका में रहनेवाले राग के कारण वह जीव स्वर्ग में देवपद प्राप्त करता है;...' श्रावक समकिती आत्मा का अनुभव करनेवाला, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ है, उसको श्रावक कहते हैं। संप्रदाय में है, उसे श्रावक नहीं कहते हैं। समझ में आया ? थैली में चिरायता भरा हो और ऊपर से शक्कर नाम रखे तो वह चिरायता मीठा नहीं होता। मीठी हो जाये ? उपर शक्कर लिखते हैं न ? ऐसे नाम रखे कि, हम श्रावक हैं, मुनि हैं। रखो नाम। थैली रखो, अन्दर में क्या ? मिथ्यात्वभाव पड़ा है, जहर तो पड़ा है। समझ में आया ? राग का कण भी दया, दान, व्रत का विकल्प उठता है वह राग है। उस राग से अपने को लाभ मानना वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसके हृदय में जहर भरा है। भगवान त्रिलोकनाथ उसको मिथ्यादृष्टि कहते हैं। उसको समकिती तो नहीं (कहते), तो श्रावक तो है ही नहीं। समझ में आया ? भाई ! कठिन बात है, भाई ! यह कहते हैं।

श्रावक को अपने स्वरूप की दृष्टि अनुभव की हुई है। मैं आनन्द, शुद्ध चिदानन्द स्वरूप हूँ। राग आता है, वह भी आस्रवतत्त्व है। सात तत्त्व में शरीर, कर्म अजीवतत्त्व है। सात तत्त्व हैं न ? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। ये शरीर, कर्म, वाणी ये सब

अजीवतत्त्व हैं। अजीवतत्त्व के द्रव्य-गुण-पर्याय अजीव में है। अजीव की पर्याय, अजीव से होती है, मेरे से नहीं; और अन्दर में पुण्य-पाप का भाव शुभ-अशुभ होता है, वह आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व अजीव से भिन्न है और अजीव से आस्रव से भिन्न है और पुण्य-पाप का भाव आस्रव से भगवान आत्मा भिन्न है। ज्ञानानन्द भगवान आत्मा का, आस्रवतत्त्व से भिन्न होकर अपने स्वरूप की अन्तर अनुभव दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और उसका नाम सम्यग्ज्ञान है।

ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक श्रावक को अन्तर में शान्ति बहुत बढती है। वह तो पहले कहा। सर्वार्थसिद्धि में एकभवतारी सम्यग्दृष्टि हैं, उससे भी पंचम गुणस्थानवाले श्रावक को शांति बढ़ गई है। उसको (देव को) एक अनंतानुबंधी कषाय का त्याग है। सच्चा श्रावक होता है, उसे दो कषाय का त्याग है। अनंतानुबंधी का और अप्रत्याख्यानवरणीय का। तो अन्दर में शान्त... शान्त... शान्ति का वेदन श्रावक को है। अनन्तगुणी शान्ति अन्दर में बढ़ गई है। आहा..हा...! ऐसी भूमिका में जो बारह व्रत का विकल्प होता है, उससे पुण्यबन्ध होकर स्वर्ग में चले जाते हैं। समझ में आया ? इतना पुण्य बाकी है तो स्वर्ग में चले जाते हैं।

मुमुक्षु :- बाद में ख्याल आता है, पहले ख्याल नहि आता।

उत्तर :- तो फिर उसका ख्याल कहाँ से आया ? पहले आत्मा जाने बिना पर का ख्याल आया कहाँ से ? एक का भान नहीं और दो का भान होता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा...! अरे.. भगवान ! प्रभु !

तेरी चीज़ में तो अनन्त अनन्त शान्ति आदि पड़ी है। अनन्त गुण भरे हैं, अनन्त गुण ! भैया ! कितने गुण है ? सुना है कभी ? कितने अनन्त ? दस-बीस नहीं। शास्त्र में है, अनन्त की गिनती कितनी ? कि, अभी तक जितने सिद्ध हुए, छह मास और आठ समय में, भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने देखा है कि, छह मास और आठ समय में ६०८ मुक्ति को पाते हैं। समझे ? छह मास और आठ समय में ६०८ मुक्ति को पाते हैं। तो अभी तक जो सिद्ध हुए, अभी तक अनादि से सिद्ध होते आये हैं, अबी यहाँ नहीं है तो महाविदेहक्षेत्र में भगवान

बिराजते हैं, त्रिलोकनाथ 'सीमंधर' प्रभु मनुष्यदेह में बिराजते हैं। वहाँ भी अभी साधु, सन्त, सन्त, आत्मज्ञानी, ध्यानी केवलज्ञान पाकर मोक्ष जाते हैं। तो छह मास और आठ समय में ६०८ मोक्ष पाते हैं। इतने अनन्त पुद्गल परावर्तन हो गये, उन सिद्ध की संख्या से एक शरीर... आलु... आलु होता है न ? बटाटा नहीं कहते ? आलु, कोई, लील-फूग होती है न ? पानी के उपर होती है, उसे क्या कहते हैं ? काई कहते हैं ना ? काई का इतना टूकडा लो, एक टूकडा में असंख्य औदारिकशरीर हैं। एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए उससे अनंतगुने जीव हैं। समझ में आया ? जितने सिद्ध हुए उससे, काई का एक इतना टूकडा लो उसमें असंख्य तो औदारक शरीर हैं। असंख्य औदारिक शरीर इतने में, हाँ ! गप्प नहीं, यथार्थ है। सुना नहीं तो क्या हुआ ? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा है, ऐसा है। एक शरीर उसमें से लो, असंख्यमें से, तो एक शरीर में इतने आत्मा हैं कि, सिद्ध से भी अनंतगुने। और उससे ये शरीर के रजकण, दुनिया के परमाणु हैं उससे अनन्तगुने हैं, जीव की संख्या से पुद्गल की परमाणु की संख्या अनन्तगुनी है। समझ में आया ? और उससे आकाश सर्वव्यापक है, आकाश सर्वव्यापक है न ? अलोक है न ? अलोक। यह तो चौदह ब्रह्मांड लोक है। खाली अलोक (है)। चला जाये, चला जाये आकाश चला जाता है, कहीं अन्त नहीं, कहीं अन्त नहीं, अन्त नहीं। उतना आकाश, उसके इतने टूकडे को प्रदेश कहते हैं। ऐसा अनन्त आकाश, जितने आकाश के प्रदेश हैं वे परमाणु की संख्या से अनन्तगुने हैं।

इस अनन्तगुने से एक जीव में उसस अनन्तगुने गुण हैं। समझ में आया ? आहा..हा... ! कुछ मालूम नहीं। घर के बर्तन मालू है, कितनी थाली और कितने बर्तन है ? धूल में भी मालूम नहीं। आत्मा कौन है ? देह में बिराजमान प्रभु आत्मा, आकाश के प्रदेश की संख्या अमाप अनन्त, उससे अनन्तगुने गुण हैं। अनन्त गुण का पिंड आत्मा भगवान, पुण्य और पाप के शुभ-अशुभराग की रुचि छोड़कर ऐसे अनन्त गुण भगवान की अन्तर अनुभव में दृष्टि होना, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक श्रावक को बारह व्रत का शुभराग आता है। इस शुभराग से

तो स्वर्ग में जाते हैं। जितनी अन्तर में निर्मलता प्रकट हुई है, उतनी तो संवर और निर्जरा प्रकट हुई। समझ में आया ? सच्चे श्रावक की बात करते हैं। वैसे तो सब अपने को श्रावक कहते हैं, हम श्रावक हैं, जन्म ले तब से कहते हैं, हम श्रावक हैं, श्रावक हैं। कौन ना कहे ? पैसे देने पडते हैं ? समझ में आया ?

'**किन्तु संवर, निर्जरारूप शुद्धभाव है;...**' देखो ! क्या कहा ? श्रावक को आत्मा के अनुभवपूर्वक जितना बारह व्रत का राग रहा, उतना पुण्यबंध हुआ और संवर, निर्जरा तो शुद्धभाव है। अन्दर में जितना पुण्य-पाप से रहित, बारह व्रत के विकल्प से रहित, संवर के अनुभव में स्थिरता शान्ति की, आनन्द की हुई वह शुद्धभाव है। शुद्धभाव संवर, निर्जरा है और शुभभाव जो बारह व्रत का है, वह आस्रव है। समझ में आया ? भैया !

शुभ, अशुभ और शुद्ध। भाव की तीन जाति हैं। आत्मा में हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना अशुभभाव हैं और इस हिंसा में मीठास आना और दया, दान, व्रत का परिणाम शुभ है वह ठीक है, ऐसा भाव आना, वह मिथ्यादृष्टि का अशुभभाव है। और मिथ्यादृष्टि जाने के बाद भी जितना हिंसा, झूठ, चोरी, विषमय का भाव (आता है वह) पाप (है), और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव पुण्य (है)। पुण्य और पाप दोनों आस्रवतत्त्व है। ये शुभभाव भी आस्रव है और उससे रहित जितने निर्विकल्प आत्मा के आश्रय शुद्ध शुद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रकट हुए वह शुद्धभाव है। वह शुद्धभाव संवर, निर्जरा है। समझ में आया ? सातों तत्त्व आ गये, देखो !

शरीर, अजीव आदि। ये शरीर और कर्म अजीवतत्त्व हैं, अजीव है। ये मिट्टी है न ? अजीव है। जड़ कर्म अजीवतत्त्व है। ये वाणी अजीवतत्त्व जड़ तत्त्व है। यह अजीव हुआ। हिंसा, झूठ, आदि के परिणाम होते हैं, वे पापरूपी अशुभ आस्रव परिणाम (हैं)। दया, दान, व्रत के (परिणाम) पुण्यरूपी आस्रवतत्त्व (है)। उससे भिन्न भगवान ज्ञानमूर्ति चिदानन्द आत्मतत्त्व (है)। उसकी अन्दर में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान प्रकट करना, वह संवर, निर्जरा तत्त्व (है) और पूर्ण शुद्धि प्रगट होना, वह मोक्षतत्त्व (है)। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- पहले क्या करना ?

उत्तर :- ये क्या कहते हैं ? धर्म के लिये पहले आत्मा राग से भिन्न है, उसकी अनुभव दृष्टि करनी। वह धर्म के लिये पहले हैं। पहले एक के बिना शून्य कहाँ से आया ? आहा..हा... ! समझ में आया ? 'एक होय त्रणकाळमां परमार्थनो पंथ' - वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ, बरत, ऐरावत या महाविदेह में सभी भूमि में 'एक होय त्रणकाळमां परमार्थनो पंथ' परमार्थ का पंथ दो, तीन, चार होता नहीं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :-पुरुषार्थ किये जा।

उत्तर :- कौन-से प्रकार का ? किस प्रकार का ? पुरुषार्थ - पुण्य-पाप के विकल्प से आत्मा पर है, उसका पुरुषार्थ किये जा, ऐसा है। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं कि, पुरुषार्थ किये जा। किस प्रकार का ? क्या जड़ का पुरुषार्थ आत्मा कर सकता है ? आत्मा शरीर को हिला सकता है ? ये तो मिट्टी है, अजीव है। उसमें उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। उसमें पर्याय का उत्पाद होता है, जड़में जड़ से होता है। क्या आत्मा उसका उत्पाद पुरुषार्थ से कर सकता है ? माननेवाला मूढ है। जड़ की पर्याय मेरे से होती है, वाणी मेरे से होती है, जड़ की पर्याय का उत्पाद जड़ से होता है। पूर्व की पर्याय का व्यय, नयी पर्याय का उत्पाद, सद्दशपना ध्रुव (है)। यह तो प्रत्येक परमाणु का उत्पादव्ययध्रुवयुक्त सत् उसका धर्म है। वह माने कि, मेरे से जड़ की पर्याय हुई, मैं बोलता हूँ। मूढ है। जड़ की पर्याय को, अजीव को जीव माना। अजीव को जीव माने, वह मिथ्यादृष्टि (है)। रट तो ले। विचार करने की कुछ खबर नहीं। 'वांचे पण नहीं करे विचार' 'दलपतराम' का आता था न ? 'ए समझे नहीं सघळो सार।' 'दलपतराम' में आता था। 'दलपत' कवि में (आता था)।

यहाँ तो कहते हैं, जड़ कर्म, शरीर, वाणी जगत के स्वतंत्र पदार्थ हैं। उसकी पर्याय का मैं आत्मा कर्ता नहीं; जैसे ईश्वर कोई जगत का कर्ता नहीं। जगत स्वयंसिद्ध तत्त्व है। ऐसे सम्यग्दृष्टि धर्मी जानते हैं। जड़ अजीवतत्त्व का कुछ करना आत्मा (का कार्य) नहीं। अजीव की पर्याय अजीव से होती है, अजीव का गुण अजीव में है, अजीव का द्रव्य अजीव में है, अजीव का द्रव्य-गुण का परिणमन अजीव से होता है। समझ में आया ? भैया ! अजीव की पर्याय अजीव से होती है, आत्मा से नहीं। कठिन बात है, भाई !

ऐसा हाथ चलता है, उसका आत्मा कर्ता नहीं है। ये हाथ चलता है, उसका आत्मा कर्ता है – ऐसा माननेवाला अजीव को जीव मानता है। मूढ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, वीतराग की आज्ञा की उसे खबर नहीं। समझ में आया ? अजीव से भिन्न पुण्य-पाप का शुभ-अशुभ परिणाम दोनों आस्रव हैं। दोनों से बन्ध है, शुभ हो या अशुभ हो, दोनों से बन्ध है। अबन्ध नहीं, अबन्ध अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं। अबन्ध स्वभाव भगवान आत्मा चादिनन्द की मूर्ति, उसके सन्मुख होकर सम्यक् प्राप्ति होना, वह शुद्धभाव है। यह शुद्धभाव संवर-निर्जरा है। आत्मा जीवद्रव्य है, वह संवर, निर्जरा है, पूर्ण शुद्धि मुक्ति है, पुण्य-पाप आस्रव है, उससे बन्ध होता है। जड़ की पर्याय जड़ बन्ध है, वह अजीव है। ऐसा भिन्न-भिन्न सात तत्त्व का यथार्थ अन्तर अनुभवपूर्वक श्रद्धा होनी, उसका नाम सम्यग्दर्शन-'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' कहते हैं। समझ में आया ? भैया ! अरे..! भगवान के मार्ग सब लूट चल रही है। मार्ग कहाँ रहा औरकहाँ मानकर चलते हैं। समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो !

श्रावक को जितना शुभभाव है, (उससे) वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। धर्म का फल संसार की गति नहीं। कोई कहता है कि, अपने धर्म करते हैं तो स्वर्ग मिलेगा। स्वर्ग का तो बन्ध है। धर्म से बन्ध होता है ? जिस भाव से बन्ध हा वह धर्म है ? समझ में आया ? जिस भाव से बन्ध हो, वह भाव धर्म नहीं। धर्म से बन्ध होता ही नहीं।धर्म तो संवर, निर्जरा है। समझे ? नहीं समझे। धर्म से आत्मा का स्वभाव मिले। पुण्य परिणाम, धर्म नहीं। उससे बन्ध (होता है), बन्ध से स्वर्गादि मिले। धर्म से मिले ? और स्वर्ग का जो भाव है, वह धर्म है ? धर्म से बन्ध हो तो फिर छूटने का क्या उपाय ? समझ में आया ? आहा..हा... ! (अज्ञानी) चिल्लाते हैं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बंधता है, वह भाव भी धर्म नहीं। बन्ध पडा है न ? बन्ध है, शुभभाव है। षोडशकारण भावना शुभभाव है। सम्यग्दृष्टि जानते हैं कि, ये भाव आते हैं, लेकिन है बन्ध। मेरी चीज़ तो राग से भिन्न है, उसको मैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान जानता हूँ, ऐसा माने। आहा..हा... ! समझ में आया ? कुछ भान नहीं और (कहे कि), हम जैन हैं। जैन किसको कहना ? जैन का सर पर सिक्का मारा है तो जैन हो गया ?

भगवान सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ कहते हैं कि, श्रावक को जो शुभभाव रहा,

उससे तो स्वर्ग मिला और संवर, निर्जरारूप शुद्धभाव है, उस धर्म की पूर्णता वह मोक्ष है। तीनों आ गये, देखो ! श्रावक को जितना शुभभाव रहा उससे पुण्यबन्ध हुआ, बन्ध मिला और आत्मा का स्वभाव का अनुभव करके जितना निर्विकारी अकषाय परिणाम हुआ, उसका नाम संवर, निर्जरा (है)। पूर्ण शुद्धि हुई, उसका नाम मुक्ति। समझ में आया ? चौथी ढाल पूरी हुई, लो !

नीचे लीखा है वह सब आ गया है। इस ओर (फूटनोट) है। ११९ पन्ना। '**अज्ञानपूर्वक चारित्र सम्यक् नहीं कहलाता,..**' है उसमें ? है ? 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' का श्लोक है।

न हि सम्यग्व्यपदेशं चरित्रमज्ञानपूर्वकं लभते।

ज्ञानानन्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मात्।।३८।।

अज्ञान नाम आत्मा का चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव के भान बिना चारित्र सम्यक् नहीं कहलाता। चारित्र को सम्यक् लागू नहीं पडता; मिथ्याचारित्र है। मिथ्याचारित्र अर्थात् राग की क्रिया है। '**इसलिये चारित्र का आराधन ज्ञान होने के पश्चात् कहा है।**' अपना अनुभव, दृष्टि करना, बाद में अन्तर स्वरूप का चारित्र स्वरूप में स्थिरता बाद में होती है। दर्शन, ज्ञान बिना चारित्र होता नहीं हो, चार ढाल पूरी हुई।

पाँचवी ढाल

भावनाओं के चिंतवन का कारण, उसके अधिकारी और उसका फल

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी;
वैराग्य उपावन भाई, अचिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।१।।

अन्वयार्थ :- (भाई) हे भव्य जीव ! (सकलव्रती) महाव्रतों के धारक (मुनि) भावलिंगी मुनिराज (बड़भागी) महान पुरुषार्थी हैं, क्योंकि वे (भव-भोगनतैं) संसार और भोगों से (वैरागी) विरक्त होते हैं और (वैराग्य) वीतरागता को (उपावन) उत्पन्न करने के लिये (भाई) माता समान (अनुप्रेक्षा) बारह भावनाओं का (चिन्तैं) चिंतवन करते हैं।

भावार्थ :- पाँच महाव्रतों को धारण करनेवाले भावलिंगी मुनिराज महापुरुषार्थवान हैं, क्योंकि वे संसार, शरीर और भोगों से अत्यन्त विरक्त होते हैं, और जिस प्रकार कोई माता पुत्र को जन्म देती है, उसीप्रकार यह बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न करती हैं, इसलिये मुनिराज इस बारह भावनाओं का चिंतवन करते हैं।

अब पाँचवी, पाँचवी ढाल है, भैया ! पहला श्लोक। '**भावनाओं के चिंतवन का कारण, उसके अधिकार और उसका फल।**' श्रावक के बाद अब मुनि लेते हैं। पहले सम्यग्दर्शन का अधिकार बहुत आ गया। सम्यग्ज्ञान का आ गया, श्रावक के व्रत का आ गया, अब मुनि की बात करते हैं।

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी;
वैराग्य उपावन भाई, अचिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।१।।

श्रावक होने के बाद मुनिपना लिये बिना विशेष शान्तिहोती नहीं, मुक्तिहोती नहीं। '**हे भव्य जीव ! महाव्रतों के धारक भावलिंगी मुनिराज...**' मुनि दिगम्बर होते हैं और अन्तर में आनन्द की, अतीन्द्रिय आनन्द की दशा (प्रगट होती है)। भगवान के शासन में मुनि उसको कहते हैं, क्षण में सप्तम गुणस्थान आता है। अकेला आनन्द.. आनन्द... आनन्द... क्षण में छठ्ठे गुणस्थान का विकल्प आता है। एक दिन में हजारों बार छठा-सातवाँ गुणस्थान आता है, उसको भगवान के शासन में मुनि कहने में आया है। समझ में आया ? भैया ! छठा-सातवाँ गुणस्थान है न ? अन्तर में तीन कषाय का अभाव हुआ है। छठा गुणस्थान हुआ। अन्तर आत्मा (के) अतीन्द्रिय आनंद का वेदन(प्रगट हुआ है)।

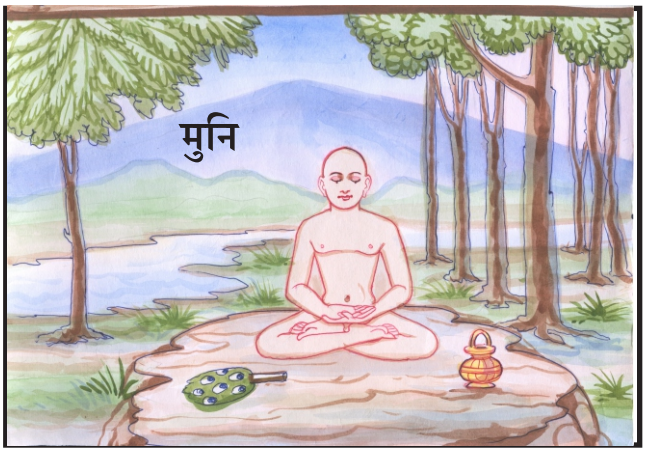

जो श्रावक को अतीन्द्रिय आनंद का वेदन है, उससे भी मुनि को अन्दर से बहुत आनन्द बढ गया। अन्दर अतीन्द्रिय भगवान में से प्रवाह (प्रगट) हुआ। तीन कषाय का नाश होकर मुनिपना प्रगट होता है। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में जब छठे गुणस्थान में है, तब उनको पंच महाव्रत का विकल्प होता है। पंच महाव्रत का विकल्प राग है, पुण्य (है)। क्षण में वह विकल्प छूट जाता है। अतीन्द्रिय आनन्द का भिन्न गोला ! क्षण में सप्तम, क्षण में छठा, क्षण में सप्तम, क्षण में छठा। ऐसी भूमिका को जैनशासन में भावलिंगी संत कहते हैं। समझ में आया ? आगो थोड़ा कहेंगे, हाँ ! उनकी नींद भी थोडी (है)। इतनी काग-नींद जितनी। उनको पौन सैकेन्ड नींद आती है। भावलिंगी संत को पौन सैकेन्ड नींद आती है। पीछे कहेंगे, रयन में आता है न

पीछे ? रयनि नहीं (आता) ? पिछली रयनि। कहाँ (है) ? पीछे ? छठी ढाल, छठी ढाल में है। वह छठी ढाल में है। '**पिछली रयनि**' शब्द आता है। छठी ढाल का पाँचवा श्लोक।

समता सम्हारैं, थुति उचारैं, वन्दना जिनदेवको;
नित करैं श्रुतिरति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेवको।
जिनके न न्हौन, न दंतधोवन, लेश अम्बर आवरन;
भूमांहि पिछली रयनि में कछु शयन एकासन करन।।५।।

मुनिदशा किसको कहें ! ओ..हो..हो... ! परमेश्वरपद ! पिछली रात में थोड़ी आती है, छठवें प्रमत्त गुणस्थान में पौन सैकन्ड निंद्रा आती है। फिर जागृत होकर सप्तम गुणस्थान में (आ जाते हैं)। फिर छठा। समझ में आया ? आहा..हा... ! मुनिपना किसको कहना ? (यह) दुनिया ने सुना नहीं। जिनको गणधरदेव नमस्कार करे। पंच नमस्कार में णमो लोए सव्वसाहूणं। ऐसे छोटे साधु को नमन नहीं करते परन्तु गणधर भगवान अभी 'सीमंधर' प्रभु के पास बिराजते हैं, वे जब बारह अंग की रचना करते हैं, (उस समय) णमो लोए सव्व साहूणं (बोलते हैं)।

हे अढ़ाई द्वीप में संत मुनि, आत्मज्ञानी-ध्यानी आनन्दकन्द में झूलनेवाले, हे संत ! तुम्हारे चरण में मेरा नमस्कार। समझ में आया ? गणधर के नमस्कार जिनके चरणों में पहुँचे, उनको मुनि कहते हैं। बारह अंग की रचना करते हैं, तब पंच नमस्कार (मंत्र) का विकल्प आता है न ? गणधर चार ज्ञान और चौदह पूर्व अंतर्मुहूर्त में रचते हैं। वह भी जब पंच (परमेष्ठी) स्मरण का अथवा रचना का विकल्प आया (तब बोलते हैं), णमो लोए सव्व आईरियाणं। 'लोए' शब्द सब में लागू पडता है। आखिर का शब्द है, अन्तदीपक है, अन्तदीपक है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं। मूल तो ऐसा है। णमो लोए सब में लागू पडता है। णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आइरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।

अहो संत ! छठी-सातवीं भूमिका के आनन्द में झूलनेवाले, उनके चरण में मेरा नमस्कार है। गणधर नमस्कार करते हैं, वह मुनि की दशा जैनशासन में गिनने में आयी है। समझ में

आया ? मुनिव्रत की भावना, मुनि कैसी भावना करते हैं, उनकी दशा कैसी है कि, श्रावक को अनतंगुनी शांति बढ गई है। उस भूमिका में बारह भावना भाते हैं। उसका अधिकार चलेगा।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आहाहा ! क्षणमें अनेक प्रकारके विचित्र रोग हो जाए - एसा शरीर है । कहाँ शरीर और कहाँ आत्मा ! इनमें तनिक भी मेल नहीं है । अहा ! ऐसी दुर्लभ मनुष्य देर मिली और ऐसा वीतराग मार्ग महाभाग्यसे मिला है, अतः मनका अधिकतम बोझा घटाकर आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करना चाहिए । पांच इन्द्रियोंके रसरुप बोझेको हटाकर आत्माको पहचाननेके विचारमें लगना चाहिए । अन्दरमें अनन्त आनंद आदि स्वभाव भरे हैं - ऐसे स्वभावकी महिमा आए (पहचान-होने पर) तब अन्तर पुरुषार्थ स्फूरित हुए बिना रहे ही नहीं । (परमागमसार-३९६)